

## दूसरा बाब

### बनी हाशिम और बनी उमय्या

बनी हाशिम के बिल मुकाबिल तारीख में जो नाम नज़र आता है वह “बनी उमय्या” है। इस कबीले की बनी हाशिम से रिक्क़ाबत (दोस्ती) और मुख़ालिफ़त (लड़ाई) के लिये यह हिकायत बयान की गई है कि उमय्या का बाप अब्दुश शम्स और बनी हाशिम के मूरिसे आला हज़रत हाशिम यह दोनों माँ के पेट से जुड़वाँ पैदा हुए थे इस तरह कि उंगली एक दूसरे की पेशानी से चस्पाँ (जुड़ी) थी। मजबूरन उनको काट कर अलग अलग किया गया जिससे खून बहने लगा। उस वक़्त लोगों ने उसे बदशगूनी मान कर कहा कि उनमें आपस में खूरेज़ियाँ होती रहेंगी।<sup>(१)</sup> यह हिकायत दुरुस्त हो या न हो लेकिन उससे यह तो अन्दाज़ा होता है कि उन दोनों ख़ानदानों की जंग ने कितनी जड़ पकड़ ली थी कि लोग उसको एक नागुज़ीर (न टलने वाला) और कुदरती चीज़ समझने लगे थे। मगर हम जहाँ तक तारीख़ के वाक़ेयात की छान बीन करते हैं हमें खुद अब्दुश शम्स और हाशिम की जंग या मुनाज़ेअत (आपसी झगड़े) की कोई मिसाल नहीं मिलती। बेशक अब्दुश शम्स के बाद उमय्या की तरफ़ से मुख़ासिमत (दुश्मनी) की इब्तेदा नज़र आती है जबकि वह हज़रत हाशिम से मुकाबले की

कोशिश में नाकाम हुआ और उस वक़्त से उसने एक शिकस्त खुर्दा फ़रीक़ (हारा हुआ गिरोह) की तरह इन्तेक़ामी तसादुम (मुडभेड़) का सिलसिला जारी रखा। वाक़ेया यह था कि मक्के में कहत पड़ा जिसमें कुरैश बहुत तबाह हाल हो गए। हज़रत हाशिम शाम की जानिब गए और वहाँ उन्होंने बहुत ज़्यादा मिक्दार में आटा फ़राहम करके उसकी रोटियाँ पकवाई और उन्हें ऊँटों पर बार करके मक्के लाये। उन रोटियों को उन्होंने चूरा कराया और उन ऊँटों को नहेर (कुर्बान) करके शोरबा तय्यार कराया और बड़ी बड़ी देगों में उंडलवा कर वह तमाम रोटियों का चूरा उन देगों में डलवा दिया। इस खाने को अरब में “सरीद” (रोटी के टुकड़े सालन में भीगे हुए) कहते थे। इस तरह उन्होंने तमाम मक्के के लोगों को खाने से सेर किया। इत्तेफ़ाक़ से उसके बाद अब्र आया, पानी बरसा और कहत साली दूर हो गई। हर शख्स कहने लगा कि अब की पहला बाराने रहमत का छीटा वह था जो हाशिम के ज़रिये से बरसा। “हाशिम” के माना हैं रोटियों का चूरा करने वाला। शायरों ने इस वाक़ये को ख़ास अलफ़ाज़ में नज़्म किया। एक शायर ने कहा:

عمر والذى هشم الثريد لقومه  
قوم بمكة مستنين عجراف

तरजुमा: “अम्र (यह हाशिम का अस्ली नाम है) जिन्होंने अपनी कौम के लिये रोटी के टुकड़े करके उन्हें खाना खिलाया, वह कौम जो मक्के में कहत से भूखी और तबाह हाल हो रही थी।”<sup>(२)</sup>

(१)तबरी, जि/२, पेज/१८०

(२)सीरते इब्ने हिशाम जि/१, पेज/८५

उमय्या दौलत मन्द आदमी था। उसने जो देखा कि हज़रत हाशिम ने यह किया तो उसे हसद दामनगीर हुआ और ख्वाह मख्वाह ब-गरजे मुकाबला उसने भी हाशिम की नक़ल उतारने की कोशिश की मगर वह कामयाब नहीं हुआ और यह अम्र (हुक्म) कुरैश में उसकी रूसवाई और बदनामी का बाइस बन गया। इस बारे में हाशिम का कोई कुसूर नहीं था मगर लोगों के तानों तशनियों से खिसयाने होकर वह हाशिम को बुरा भला कहने लगा और उसने हाशिम को “मुनाफ़िरत” (नफ़रत) की दावत दी। यह एक तरह का मुकाबला अरबों में रायज था कि दो शख्स अपने अपने कारनामों को पेश करके किसी सालिस (तीसरे) को हक़म (जज) बनाते थे कि वह फ़ैसला कर दे कि कौन उनमें ज़्यादा साहिबे फ़ख़ व लाएके अज़मत है। इस सालिसी (तीसरे फ़रीक) के लिये ज़्यादा तर काहिन (जादूगर) मुन्तख़ब किये जाते थे जो इल्मे कयाफ़ा (अच्छे बुरो की पहचान करने वाला और सितारों का इल्म करने वाला) और नुजूम में बड़े माहिर होते थे। हज़रत हाशिम ने अपनी उम्र की बुजुर्गी और अपने रुतबे की बलन्दी के लिहाज़ से उमय्या के साथ मुकाबले से इन्कार किया मगर कुरैश के आम अफ़राद ने हज़रत हाशिम को मजबूर किया। आख़िर आप भी आमादा हो गए और कहा कि मैं इस शर्त पर मुकाबला करता हूँ कि शिकस्त खुर्दा फ़रीक (हारा हुआ ग़िरोह) अपने मुकाबिल को 50 ऊँट सियाह आँखों वाले सिपुर्द करे जो सरज़मीने मक्के में नहेर (ज़िबह) किये जायें और दस बरस के लिये वह मक्का से जिला वतन (देश से निकालना) हो जाये। उमय्या इस शर्त पर रज़ामन्द हो गया। चुनानचे कबील-ए खुज़ाआ के काहिन को हक़म (जज) मुक़रर किया गया। उसने

फ़ैसला हाशिम के हक़ में और उमय्या के ख़िलाफ़ दिया। हज़रत हाशिम ने करार दाद के मुताबिक़ 50 ऊँट हासिल किये और उन्हें नहेर कराके फिर तमाम अहले मक्का की दावत कर दी और उमय्या को दस बरस के लिये मक्के से जिला वतन होना पड़ा और वह इस मुद्दत तक शाम में क़याम पज़ीर रहा। यह पहली अदावत थी<sup>(4)</sup> जो उमय्या की औलाद में बनी हाशिम के मुकाबले में नस्ल दर नस्ल बरकरार रही। उसके बाद हाशिम के फ़रज़न्द जनाबे अब्दुल मुत्तलिब और उमय्या के फ़रज़न्द हर्ब में मुकाबला हुआ। इस तरह कि जनाबे अब्दुल मुत्तलिब के जवार (पड़ोस) में एक यहूदी का क़याम था जिसका नाम अज़ीना था। उसे तिज़ारत में बहुत तरक्की हुई जिससे वह बहुत दौलतमन्द हो गया तो हर्ब बिन उमय्या को उससे पुरखाश हो गई। उसने कुछ लोगों को आमादा करके उसे क़त्ल करा दिया और उसका सामान लुटवा दिया। जनाबे अब्दुल मुत्तलिब को तहकीक़ से कातिलों का पता चल गया मगर यह मालूम हुआ कि हर्ब ने उन्हें कहीं छुपा दिया है तो उन्होंने ने हर्ब को समझाया कि कातिलों को हवाले करदो लेकिन वह इस पर तय्यार न हुआ। बल्कि जनाबे अब्दुल मुत्तलिब से लड़ने पर आमादा हो गया। उसके नतीजे में फिर नुफ़ैल काहन को सालिस बनाया गया जिसके फ़ैसले पर हर्ब को यह जुरमाना अदा करना पड़ा कि वह सौ ऊँटनियाँ जनाबे अब्दुल मुत्तलिब के हवाले करे जिन्हें वह उस मक़तूल यहूदी के वारिस को खूनबहा के तौर पर दे दें और उस यहूदी का जो माल लूटा गया था वह सब भी वापस दिलवाया गया। चन्द चीज़ें दस्तयाब नहीं हुईं तो उनका तावान हज़रत अब्दुल मुत्तलिब ने

(4) तबक़ात इब्ने सअद मतबूआ लीदन जि/1,

पेज/43.44, तबरी जि/2, पेज/180

अपने माल से अदा किया।<sup>16</sup> पै दर पै (लगातार) शिकस्त खाने के लाजमी नतीजे के तौर पर बनी उमय्या अरबी खून की बहुत सी लताफतें खोते गए और उनमें दनाअत, नालाएकी फरेब, (धोखा धड़ी) एहसासे कमतरी और दूसरे इसी तरह के औसाफ पैदा होते गए जो मुसलसल शिकस्त खाने वालों की खासियत हुआ करते हैं।

यहाँ तक कि बनी हाशिम और बनी उमय्या के दरमियान आम अफरादे अरब की निगाहों में इतना तफरिका पैदा होता गया कि यह चीज़ काबिले गौर बन गई कि यह दोनों एक ही नस्ल की दो शाखें हैं भी या नहीं। अरब कौम के यह तअस्सुरात (खयालात) देख कर बनी उमय्या, बनी हाशिम के खिलाफ ज़रबें लगाते थे मगर हर मर्तबा उन्हें नाकामी ही होती थी। हज़रत मोहम्मद मुस्तफा<sup>स०अ०</sup> भी उठे तो बनी हाशिम ही के यहाँ से। यह आखरी बड़ी शिकस्त थी जिसे बनी उमय्या आसानी से सह न सकते थे। शिबली नोमानी सीरते नबी जिल्द अब्बल में पेज 158 पर लिखते हैं कि: “आँहज़रत की नुबूवत को खानदाने बनी उमय्या अपने रकीब (हाशिम) की फ़तह का खयाल करता था इसलिये सबसे ज़्यादा इसी कबीले ने आँहज़रत की मुखलिफ़त की।”

## तीसरा बाब

### इस्लाम और उसका पैग़ाम

ज़हूरे इस्लाम से क़ब्ल का ज़माना “अय्यामे जाहलियत” के नाम से याद किया जाता है। इसके मुतअल्लिक यह खयाल दुरुस्त नहीं है

कि अरब इसमें वहशत और बरबरियत (वहशी पन) के दौर से गुज़र रहे थे और तमद्दुन व तहज़ीब से वाकिफ़ नहीं हुए थे बल्कि जिस तरह डाक्टर वहीद मिर्ज़ा साहब ने लिखा है वाक़ेया यह है कि जुनूबी अरब इस्लाम से सदियों क़ब्ल एक बड़ी तहज़ीब का गहवारा और कारोबार तिजारत का एक खुशहाल मरकज़ था। “हुमैरी” बादशाहों के आसारे क़दीमा, सददे मारिब, बागे शद्दाद और तख़्ते बिल्कीस मलक—ए—सबा वगैरह के तज़क़रों में इसका मुकम्मल सुबूत मौजूद है। इसके अलावा अय्यामे जाहलियत की शायरी जो कि अदब का बेहतरीन नमूना है इसी से यह भी पता चलता है कि अय्यामे जाहलियत के अरब बहुत सी खूबियों के हामिल थे। मसलन बहादुरी, सखावत, मेहमान नवाज़ी, वफ़ादारी, शौहरी मोहब्बत और बरादरी उन्स (भाईयों में मुहब्बत) वगैरह, खुलासा यह कि शायरी उनके अख़लाकियात का दफ़्तर है और इससे पता चलता है कि वह शराफ़त का काफी उनसुर (तबियत) रखते थे। उनकी शायरी बिलखुसूस उनमें से चन्द की, इस बात को भी ज़ाहिर कर देगी कि अगरचे वह उस ज़माने के इलहामी मज़हब (अल्लाह के दीन) को न मानने के बाइस मुशरिक थे और बुत परस्ती भी किया करते थे ताहम वह मज़हब के ख़ास ख़ास अकायद से बिल्कुल ना—वाकिफ़ व बेगाना न थे। वह अपनी बुत परस्ती की यह तावील (दलील) करते थे कि उन बुतों के ज़रिये से हम खुदा—ए—वाहिद (अल्लाह) की बारगाह में कुर्ब हासिल करते हैं। फिर यह कि अरबों की एक बड़ी तादाद जनाबे इस्माईल<sup>अ०स०</sup> की नस्ल से तअल्लुक रखती थी और यह नामुमकिन है कि वह अपने आबाओ अजदाद (पूर्वजों के तालीमात से क़तअन बेगाना हो गए हों बल्कि हकीकत

(4) क़ामिल इब्ने असीर तबा/मिस्न, जि/2, पेज/6

यह है कि तुमदुनी (तहजीबी) हैसियत से इस्लाम से क़बूल के ज़माने में अरब की जमाअत तरक्की के बाद तनज़्जुली (गिरावट) की तरफ़ जा रही थी। अब इसमें कुछ उमदा क़दीम खुबियों का शायबा (अक्स) तो मौजूद था लेकिन ज़्यादा तर इस में बुरी आदतें दाख़िल हो गई थीं। वह हर साल मक्के में ब—फ़र्ज़ हज जमा होते थे लेकिन इस मुक़द्दस फ़र्ज़ की अहमियत उनके दिलों से महो (गायब) हो चुकी थी। उनके कारवाँ हिजाज़, इराक़, और शाम में अब भी असबाब (सामान) से लदे हुए जाते थे लेकिन अब उन में सनअत व तिजारत का जोश सर्द (ठंडा) हो चुका था और इन्तेहाई ग़ुरबत ने उन्हें हरीस (लालची) बना दिया था। उनमें अल्लाह का एक धुंधला और मदधम तसव्वुर मौजूद था लेकिन उनके बुत उनके नज़दीक ज़्यादा मुक़द्दस थे। वह सुलह पसन्द और मुतमइन जिन्दगी के फ़वायद (फ़ायदों) से वाकिफ़ थे और जंग से मुतनफ़ि़र (दूर) रहना चाहते थे जिसे वह “शोला दर आग” या उस मन्हूस जानवर से जिसके यहाँ कसरत से तमाम (जुड़वाँ) बच्चे पैदा होते हैं तशबीह (मिसाल) दिया करते थे लेकिन उनकी खुद गर्ज़ी, और ग़ुरबत उनको आमादा करती थी कि वह अपने हमसाए (पड़ोसी) के माल पर दस्ते ततावुल दराज़ (माल ग़स्ब करना) करें। वह अपने मुर्दों का ख़ूब मातम करते थे लेकिन इन्तेक़ाम क़शी (बदले की कार्रवाई) से अपने को बाज़ न रख सकते थे। नतीजा यह होता था कि नस्लन बाद नस्लन बराबर खूँरेज़ जंगें जारी रहती थीं। वह अपने बच्चों से मोहब्बत करते थे, इसलिये कि वह उनके जिगर के टुकड़े हैं जो ज़मीन पर चलते फिरते हैं लेकिन उन ही में से बाज़ को अपनी इज़्ज़त का इतना पास रहता था कि वह इस ख़याल को

बर्दाश्त ही नहीं कर सकते थे कि उनकी लड़कियाँ किसी ज़ालिम भाई या चचा की कनीज़ी में चली जायें या उनके रहमो करम पर पड़ जायें और इसलिये वह उनकी हलाकत को अपनी इज़्ज़त के बरकरार रखने का बेहतरीन ज़रिया समझते थे।

यही हालत वह होती है जिसकी इस्लाह निहायत दुश्वार है क्योंकि दौरे बरबरियत (वहशी पन) व वहशत से गुज़रती हुई कौमें सादा लौह होती हैं। उनके दिलों पर जैसा नक्श बिठलाया जाये वह आसानी से उतर आता है इसलिये कि उसके खिलाफ़ कोई नक्श जमा हुआ नहीं है मगर अरबों की तमदुनी (रहेन सहन) ख़राबियाँ वह थीं जो ख़ालिस माददी साख़्त (दुनियावी बनावट) के तमदुन और हवसे इक्तेदार की पैदावार होती हैं। उन्होंने अरबों की उफ़तादे तबा (मिज़ाजी ख़राबियाँ) के साथ मिलकर सोने पर सुहागे का काम किया था।

एहसासे बरतरी कौमियत से मुन्तक़िल हो कर जब इन्फ़ेरादियत की तरफ़ आता है तो उसका नतीजा होता है बाहमी रि़काबत (आपसी दुस्ती) और आपस की ख़ाना जंगी। यह बात अरबों में इन्तेहा दर्जे पर पहुंच गई थी। फिर इसी का नतीजा था कि मसावाते इन्सानी (बराबरी) कोई चीज़ न रही थी और ग़ल्ब—ए—ताक़त और इक्तेदार सब कुछ था। उसकी एक अदना मिसाल यह है कि एक बड़े आदमी के क़त्ल हो जाने पर सिर्फ़ उसके कातिल को क़त्ल न किया जाता था बल्कि उसके क़बीले के सैंकड़ों बे गुनाह आदमियों को मार डाला जाता। तब कहीं यह समझा जाता था कि उसके खून का बदला हुआ उसके बरख़िलाफ़ अगर बड़े आदमी के हाथ से कोई छोटा आदमी क़त्ल होता था तो उसका खून किसास (बदले) का मुस्तहक़ न

समझा जाता था। यह बड़े और छोटे की तफ़रीक़ हज़ारों तमद्दुनी गुनाहों का सरचश्मा थी और इन्सानियत के परख़्वे उड़ा रही थी। इसका सबब यह था कि उन्होंने माददियत को सब कुछ समझ लिया था। मावराउल माददा का तख़य्युल (आख़िरत का ख़याल) बाकी न रहा था। इसलिये माददी (दुनियावी) ताक़त ही की बिना पर वह इस्तेयाज़ात कायम करते थे। यह हालत कमो बीश अरब के अलावा दूसरे मुल्कों की भी थी।

मज़हबी हैसियत से अरब निहायत पस्ती में थे। उनमें कोई एक मज़हब मुशतरक़ न था बल्कि वहाँ मुतअददिद (बहुत से) मज़ाहिब के अफ़राद रहते थे और बड़ी जमाअत बुत परस्ती और सितारों की परस्तिश को अपना शिआर बनाये हुए थी। चुनानचे काबे ही में तीन सौ साठ बुत रखे हुए थे जिनमें से एक एक की परस्तिश साल के एक एक दिन की जाती थी क्योंकि अरबी साल तीन सौ साठ दिनों का होता है। जो मज़हब रायज थे जैसे यहूद, मजूस और नसारा वह भी पस्ती की तरफ़ मायल नज़र आ रहे थे। आमाले नाशाइस्ता (ग़लत काम), दूसरी जमाअतों से नफ़रत, रवादारी का मफ़कूद (न होना) होना, आपस की ख़ूँरेजी और ऐसी ही बहुत सी ख़राबियाँ उनमें वाज़ेह तौर पर मौजूद थीं और इसलिये फ़ितरते इन्सानी किसी ऐसी मुन्तख़ब हस्ती की ख़्वाहँ थी जो दुनिया को इस मुसीबत से निजात दिलाए।

ऐसे वक़्त में मोहम्मद बिन अब्दुल्लाह<sup>सौ</sup> इस्लाम का ज़लज़ला अफ़ग़न (हलचल मचा देने वाला) पैग़ामे इन्केलाब लेकर दुनिया के सामने आ गये और मुर्दा इन्सानियत को ज़िन्दगी का मुज़दा (पैग़ाम) सुनाया जैसा कि डाक्टर वहीद मिर्ज़ा साहब ने लिखा है: “हज़रत<sup>सौअ</sup>

का काम यकीनन दुशवार था इसलिये कि आप महज़ वहशी लोगों को मुतमद्दिन (तहज़ीब याफ़ता) नहीं बना रहे थे बल्कि बिगड़ी हुई समाजी कैफ़ियत को सुधारना चाहते थे। आपका काम उन तमाम अकायद व तवहहुमात, रिवायत व मरासिम (रसमें) का अरबों के दिलों से महो (मिटाना) करना था जो उनकी ज़िन्दगी का जुज़वे ला—युनफ़क़ (न ख़त्म होने वाला ज़िन्दगी का हिस्सा) बन चुकी थी। रसूल<sup>सौअ</sup> उन लोगों को बुर्दबारी, ख़ाक़सारी, पाकबाजी और अफ़व (माफ़ करना) का सबक़ पढ़ाना चाहते थे जिनके नज़दीक़ मुआफ़ कर देना कमज़ोरी की दलील और इन्तेक़ाम न लेना ज़िल्लत और बुज़दिली की अलामत समझा जाता था। रसूल<sup>सौअ</sup> उन लोगों को मसावात और अख़ूवत (भाई चारगी) की तालीम देना चाहते थे जो कि अपने ख़ानदानी शरफ़ पर फ़ख़ किया करते थे और अपने आबाओ अजदाद के पूरे शजरे को निहायत सख़्ती के साथ महफूज़ रखा करते थे। उन चीज़ों के अलावा इस्लाम को अरबों के और बहुत से दूसरे रुज़हानात से बरसरे पैकार (मुकाबला) होना पड़ा। मसलन उसने शराब की ममानिअत (मना) कर दी जिसके वह आदी हो चुके थे और जिसका इस्तेमाल वह सखावत की दलील समझते थे। उसने क़मारबाजी (जुआ खेलना) बन्द कर दी जो अरबों के नज़दीक़ बुज़दिल वजूद की एक क़तई अलामत थी और बहुत सी मुख़रबे अख़लाक़ (उनके अन्दर की ख़राबियाँ) आदतों को ममनूअ (पाबन्दी) करार दिया। अरब इस बात का तसव्वुर भी न कर सकते थे कि सबसे ज़्यादा मुक़द्दस इन्सान क्योंकर खुदा की बारगाह में सबसे ज़्यादा मुअज़्जिज़ (मोहतरम) हो सकता है या इस्लाम कुबूल करने के बाद कोई पस्त इन्सान क्योंकर अरब के शरीफ़

तरीन खानदानों के अशखास से बरतरी का दावा कर सकता है।”

ख्वाजा गुलामु सय्यदेन साहब ने इसे बहुत अच्छे लफ्जों में लिखा है कि: “इस्लाम एक ऐसी दुनिया के लिए जो पुजारियों के कब्ज़-ए-इकतेदार और दौलतमन्दों के जेरे हुकूमत मुसीबत के दिन काट रही थी पैगामे आज़ादी ले आया।

आज़ादी पुजारियों की कैद से जो अब्दो माबूद (बन्दे और अल्लाह) के दरमियान वास्ता बनने के दावेदार थे आज़ादी गिरोहे उमरा (अमीरों) की हुकूमत से जो न किसी खुदाई कानून की परवाह करते थे और न किसी इन्सानी कानून की, बल्कि बगैर रोक टोक के हरीसाना (लालच) तरीकों पर दूसरों की मेहनत व मुशक़त के फलों से खुद लुत्फ़ अन्दोज़ हो रहे थे, आज़ादी गुलामों और नीच जातों के लिये उनके मालिकों के मज़ालिम और ख़िलाफ़े इन्सानियत बेरहमाना सुलूक से, आज़ादी तब्क़-ए-निसवाँ (औरतों) के लिये उस अमली गुलामी से जिसमें वह इन्सानी हुकूक के इत्तेदाई मनाज़िल से भी महरूम कर दी गई थीं, आज़ादी आम इन्सानों के लिये उन कुऊद (पाबंदी) से जिनमें वह ज़ात पात, रंग और कौम की तंग नज़री की बन्दिशों में मुबतिला थे जिससे उनकी हयाते इजतेमाई फ़ना (आम ज़िन्दगी बरबाद) हो रही थी और वह मुतखासिमीन (झगड़ालूओं) के गिरोह में मुन्क़सिम (बट) हो रहे थे गरोहे इन्सानी किस तरह अपने खुद साख़्ता (बनाए हुए) ज़ालिमाना कैदों में मुतकय्यद (बन्द) हो रहा था। हिन्दुस्तान के मशहूर शायर और “फ़ैलसूफ़” एकबाल ने इस मन्ज़र की तसवीर कशी ज़ैल के अशआर में की है।

बूद इन्साँ दर जहाँ इन्साँ परस्त  
ना-कसो नाबूदमानदो जेरे दस्त

सतवते किसरा व कैसर रहज़नश  
बन्दहा दरदस्तो पाओ गर्दनश

काहिनो सुलतानो पापा ओ अमीर  
बहरे यिक नख़चीर सद नख़चीर गीर

अज़ गुलामी फ़ितरते ऊँ दूँ शुदा  
नग़महा अन्दर नये ऊ खूँ शुदा

इस्लाम ने उसे एक पैगामे आज़ादी सुनाया। दुर्रियत (आज़ादी) व मसावात (बराबरी) और इन्सानी बरादरी की तलकीन की और तवारीख़े इन्सानी में पहले पहल शहरी और इन्सानी हुकूक पूरे तौर पर आम इन्सानों को बिल उमूम (एक जैसे) अता किये जिससे वह ब-सबबे कौमियत, रंग या जिन्स के या ब-सबबे गुरबत व फलाकत (फ़ाका ज़द) के महरूम थे। गुरबा, मज़लूम और आम इन्सानों के आम तब्क़े को जो अब तक बड़ी बेदर्दी से पीसा जा रहा था, नई उम्मीदों और अपने कारआमद होने का नया एहसास अता किया।

ता अमीने हक़ ब-हक़ दाराँ सिपुर्द  
बन्दगाँ रा मसनदे ख़ाकाँ सिपुर्द  
एतेबारे कारे बन्दाँ रा फ़ुजूद  
ख़्वाजगी अज़ कारफ़रमायाँ रबूद  
कुव्वते ऊ हर कुहन पैकर शिकस्त  
नौए इन्साँ रा हिसारे ताज़ा बस्त

ताज़ा जाँ अन्दर तने आदम दमीद  
बन्दा रा बाज़ अज़ खुदा वन्दाँ ख़रीद

दुर्रियत ज़ाद अज़ ज़मीरे पाके ऊ  
ई मए नोशीं चकीद अज़ ताके ऊ

ना-शकीबे इम्तेयाज़ात आमदा  
दर निहादे ऊ मसावात आमदा



अस्रे नौ कीं सद चिराग आवुरदा अस्त  
चश्म दर आगोशे ऊ वाकरदा अस्त

यह कीमती खयालात थे जिनको इस्लाम अरबों की ज़िन्दगी में दाखिल करना चाहता था और अरबों की विसातत से तमाम इन्सानों में पहुंचाना चाहता था।”

इस्लाम ने इस ज़हनी इन्केलाब के पैदा करने के लिये सबसे पहले असली सबब को दूर करते हुए लोगों की निगाह को माददियत के एहाते (सर्किल) से निकाल कर एक गैबी ताकत की जानिब मुतवज्जेह किया जिसके लिहाज़ से तमाम अफ़रादे इन्सानी यकसाँ हैसियत रखते थे। इसके सिवा मसावात कायम करने के लिये दौलत को बराबर तकसीम कर दिया जाये लेकिन बाजूओं की ताकत, मौरूसी वजाहत (नस्ली शान व शौकत), कौम व कबीले की तकसीम किस तरह की जा सकती है? इस्लाम जानता था कि ख़ारजी मसावात (बाहरी बराबरी) मुमकिन नहीं इसलिये उसने ज़हनी इन्केलाब पैदा करने की कोशिश की ताकि इस ज़हनी तब्दीली के ज़रिये एक इन्सान दूसरे इन्सान को बराबर समझे, उसने सही तौर पर समझा कि बरादरी और बराबरी की अस्ल कुंजी क्या है? अहसासे उखूवत व मसावात की वाहिद बुनियाद यह है कि जब कोई कसरत किसी वहदत की तरफ़ मुसतनद (पलट) हो जायेगी तो उसके अजज़ा में बरादरी और बराबरी का एहसास पैदा हो जाना फ़ितरी है। दो भाई क्यों एक दूसरे के साथ बराबरी का दावा रखते हैं? इसलिये कि एक बाप के बेटे हैं, एक ख़ानदान के आदमी क्यों आपस में बरादरी और बराबरी का तसव्वुर रखते हैं? इसलिये कि एक मूरिसे आला की नस्ल से हैं। एक मुल्क के लोग आपस में क्यों राब्त—ए—उखूवत महसूस करते हैं और क्यों

हुकूक में बराबरी के तालिब (बाँग) होते हैं? इसलिये कि एक सरज़मीन के बाशिन्दे हैं। इतना ही नहीं बल्कि मशरिफ़ वाले आपस में यगानगी (बराबरी) और मगरिब वाले आपस में यकजेहती (इत्तेहाद) क्यों महसूस करते हैं? इसलिये कि वह आफ़ताब के लिहाज़ से एक सिम्त के रहने वाले हैं। मालूम हुआ कि कसीर अफ़राद में इत्तेहाद व मसावात का एहसास पैदा करने का ज़रिया सिर्फ़ वह एक वसी नुक्त्त—ए—वाहिद (मरकज़) है जिसकी तरफ़ ज़्यादा से ज़्यादा अफ़राद यकसाँ तौर पर मन्सूब हो सकते हैं। दूसरे लफ़्ज़ों में कुल्लिया (निचोड़) यह हुआ कि जब कोई कसरत वहदत की तरफ़ मन्सूब हो तो उसके अन्दर बराबरी और बरादरी का एहसास पैदा हो जायेगा। मगर याद रखना चाहिए कि मज़कूरा बाला इत्तेहादों में से हर इत्तेहाद इफ़तेराक़ (जुदाई) का पेश ख़ैमा करार पाया। यानी जब एक बाप के बेटों में ऐका पैदा हुआ तो दूसरे बाप के बेटों के सामने महाज़ कायम हुआ और जब एक ख़ानदान के लोगों में ऐका कायम हुआ तो दूसरे ख़ानदान वालों के सामने महाज़ कायम हुआ जिसका नतीजा हुआ करता है कौमों की जंग और ममालिक का बाहमी तसादुम (मुल्कों का आपसी टकराव) और फ़तह व शिकस्त (जीत और हार) का ग़ैर मुतनाही सिलसिला (न ख़त्म होने वाला सिलसिला) जिसके करिश्मे आज भी नज़र आ रहे हैं और जब एक सिम्त वालों में इत्तेहाद हुआ तो दूसरी सिम्त वालों के सामने महाज़ कायम हुआ यहाँ तक कि युरोप वाले एक अलग कौम बन गए और एशिया वाले एक अलग कौम और जब इसके साथ रंग के इत्तेहाद ने असर दिखाया तो ग़ोरो और कालों का ऐसा इफ़तेराक़ (जुदाई) पैदा हुआ कि

गोरों ने न सिर्फ कालों को अपने साथ एक होटल में खाना खाने से रोका बल्कि एक इबादतगाह में इबादत के लिये एक ही मज़हब वालों के लिये जमा होना तक ममनूअ़ करार दिया। यह सब नतीजा था इसका कि इत्तेहाद की दीवारें आलमे इन्सानियत के बीच में उठाई गई थीं इसलिये हर दीवार जो उठी उसने इधर वालों को तो मुत्तहिद किया और उधर वालों को जुदा कर दिया। इस्लाम ने इस अस्ल उसूल को लेते हुए कि इत्तेहादे अफ़राद का राज इत्तेहादे मरकज़ी में मुज़मर है (लोगों का इत्तेहाद एक मरकज़ पर जमा होने में पोशीदा है।), ज़रूरत समझी कि इन तमाम दरमियानी दीवारों को ढा दिया जाये और बीच के उन तमाम खुतूत (तअस्सुब की हदें) को मिटा कर उनके बजाए एक वसी एहाता ऐसा कायम किया जाये जहाँ नस्ल, रंग, मुल्क और कौमियत किसी चीज़ की तफ़रीक़ न हो। वह एहाता ऐसा हो जो तमाम आलमे इन्सानी को अपने घेरे में ले ले और चूँकि इस एहाते के बाहर फिर कुछ रह नहीं जायेगा इसलिये इफ़तेराक़ (जुदा) व इस्तेयाज़ (फ़र्क़) का सवाल ही न पैदा हो सकेगा। इस के लिये कोई माददी चीज़ नुक़त-ए-मरकज़ी नहीं बन सकती थी क्योंकि जो माददी (दुनियावी) शै होगी वह महदूद होगी और महदूद होने के साथ उसमें कुर्ब व बोद (नज़दीक व दूर) नीज़ कमी व ज़्यादती के मदरिज (दर्जे) पैदा होंगे इसलिये ज़रूरत थी कि निगाह को तमाम माददी चीज़ों से हटा कर उस ग़ैर माददी (दुनियावी) बलन्द व बालातर ताक़त की तरफ़ मोड़ दिया जाये जहाँ हुदूद व इक़दार (Limitation & Boundation) कायम नहीं होते। इसका सबके साथ यक़सौं तअल्लुक़ है जो सबका है और सब उसके हैं। यह ख़ालिक

की ज़ात है जिसे इस्लाम ने माबूदे बर हक़ और खुदाए कुल साबित करते हुए सबका क़िबल-ए मक़सद करार दे दिया है।

इस एहसास के पैदा होने के साथ कि सब खुदा के बन्दे हैं। अफ़रादे इन्सानी में एहसासे उखूव्वत (भाई चारगी) व मसावात (बराबरी) पैदा होना लाज़मी है। जब एक बाप के बेटे आपस में भाई भाई हैं और एक मूरिसे आला की औलाद में बरादरी कायम हो जाती है और एक सरज़मीन के रहने वाले अपनी मादरे वतन के लिहाज़ से आपस में उखूव्वत महसूस करते हैं और एक सिम्त के रहने वाले अपने में यक़जेहती का तसव्वुर करते हैं तो क्या वजह है कि एक ख़ालिक के बन्दे सब आपस में भाई भाई न बन जायें। यह था वह अमली सबक़ जो इस्लाम की तौहीद में मुज़मर (पोशीदा) था।

बाज़ मज़ाहिब ने ख़ालिक के तख़य्युल (ख़यालात) में भी मुगाएरात (तब्दीली) बरती थी। उन्होंने खुदा को अपना करार दे लिया था और यह कहते थे कि हम उसके बेटे हैं। इस्लाम ने उन लोगों के ख़याल या ज़ोम का ज़िक़र करते हुए एक तन्ज़िया अन्दाज़ में उसकी मुख़ालिफ़त की और उसके मुकाबले में मुसलमानों को यह तलक़ीन नहीं किया कि तुम ही अल्लाह के सपूत हो और बस, बल्कि मुसलमानों को अक़वामे आलम के मुकाबले में यह कहने की तालीम दी कि **होव रब्बोना व रब्बोकुम लना आमालोकुम व लकुम आमालोकुम** (यानी) “वह हमारा भी परवरदिगार है और तुम्हारा भी। हमारे लिये हमारे आमाल हैं और तुम्हारे लिये तुम्हारे आमाल।” इस तरह इस्लाम ने सबको मसावात का दर्जा देते हुए एक मेयार इस्तेयाज़ का भी कायम कर दिया और वह इन्सानी किरदार है। अब साबिक़ के



तमाम तफव्वुक (बरतरी) और बलन्दी के इम्तेयाजात (फर्क) मिट कर एक न्या मेयार इम्तेयाज का कायम हो गया और वह यह कि जो शख्स फ़राएज़े इन्सानी को सबसे ज़्यादा अन्जाम देता हो वह सबसे बेहतर है। **“इन्न अकरमकुम इनदल्लाहे अतकामकुम”** “बेशक अल्लाह के नज़दीक साहिबे करामत वह है जो मुत्तकी व परहेज़गार है” इस उसूल के मातहत ग़ल्बा, ताक़्त, इक्तेदार, कौम व कबीला की ज़्यादती और तादाद की अक्सरियत यह तमाम बातें कुछ न रहीं बल्कि यह उसूल कायम हो गया कि एक इन्सान को दूसरे इन्सान पर फ़क़त एहसासे फ़राएज़ की बिना पर फ़ज़ीलत हासिल होती है। इसके मातहत अख़लाक पर बहुत ज़ोर दिया गया। यहाँ तक कि बानिए इस्लाम ने अपना मक़सदे रिसालत ही यह क़रार दिया और एलान किया **अलअख़लाको इन्नमा बोइस्तो लातुम मकारिम दूसरी लफ़्ज़ों में इन्नमा बोइस्तो लातुम हसनल अलअख़लाक** मेरी बेअसत महेज़ इन्सान सुधार और अच्छे एख़लाक की तकमील के लिए है।<sup>(5)</sup>

मुसलमानों से साफ़ कह दिया गया कि यह ख़याल न करना कि तुम्हें तुम्हारे आमाल की सज़ा न मिलेगी बल्कि जो जैसे आमाल करेगा वैसा ही पायेगा। मुसलमान वह है जो अहकामे खुदा के आगे सरनिगूँ (झूकाना) हो जाये। सरकशी मुस्लिम की शान नहीं है। तुम अल्लाह के दोस्त जब ही कहलाए जा सकते हो जब उसके अहकाम की तमील (पालन) करो वरना उसकी रहमत के हक़दार नहीं और न उम्मत मरहूमा में शामिल होने के काबिल।

मआशिरत (आपसी मेल जोल) के बाब में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि सब इन्सान ज़ात

और असलियत के लिहाज़ से एक ही हैं। **(वाहेदतो खलककुम मिन नफ़से)**<sup>(6)</sup> क़बायल और अक़वाम में उनकी तक़सीम सिर्फ़ तआरूफ़ और शनाख़्त के लिये है।

**(وَجَعَلْنَاكُمْ شُعُوبًا وَقَبَائِلَ لِتَعَارَفُوا)**<sup>(7)</sup> मगर फ़ज़ीलत व बलन्दी का तअल्लुक ज़ात और कौमियत से बिल्कुल नहीं है। **(अलकोरैशी वला लिलअरबी अला गैरिल अरबी ला फ़ख़िल कुरैशी अलमियुन गैर)**<sup>(8)</sup> फ़ज़ीलत व बुजुर्गी सिर्फ़ परहेज़गारी और तक़वा यानी इन्सानी आमाल और फ़राएज़ की बजाआवरी के साथ वाबस्ता है। **“इन्न अकरमकुम इनदल्लाहे अतकामकुम”**<sup>(9)</sup> उसको पैग़म्बर ने सिर्फ़ कौलन नहीं बल्कि अमलन भी दिखाया। आपने अपना मुअज़्ज़िन (अज़ान देने वाला) बिलाले हबशी को क़रार दिया और जब किसी ने उसे देख कर नाक भौं चढ़ाई और कहा “यह काले रंग का गुलाम भी भला इस क़ाबिल है कि अज़ान दे।” तो कुरआन की आयत उतरी **(يَا أَيُّهَا النَّاسُ إِنَّا خَلَقْنَاكُمْ مِنْ ذَكَرٍ وَأُنْثَى)** यानी सब आदमी

यकसाँ हैं, उनमें कोई फ़र्क नहीं।<sup>(10)</sup> जैसाकि अब्दुल हामिद साहब बदायूनी ने कहा है: “इस्लाम दर अस्ल हुकूमते इलाहिया का क़याम चाहता है। इस्लामी हुकूमत का दारो मदार अदल व इन्साफ़ क़रार दिया गया है। चुनौनचे कुरआने मजीद ने इस बारे में फ़रमाया:

**इज़ा हक़तुम बैनन्नासे अन्न तहकोमू बिल अदले इन्नल्लाह नेइम्मा यएज़ोकुम**

(सूरए निसा)

<sup>(6)</sup> उसने तुमको एक नफ़स से पैदा किया

<sup>(7)</sup> हमने तुम्हें मुख़तलिफ़ ख़ानदानों और कबीलों में इसलिये क़रार दिया है कि आपस में शनासाई (जान पहचान) पैदा हो

<sup>(8)</sup> क़रशी को गैर क़रशी और अरब को गैर अरब पर कोई फ़ख़ नहीं

<sup>(9)</sup> तुम में अल्लाह के नज़दीक सबसे ज़्यादा मअज़्ज़िज़ (मोहतरम) वह है जो तुम में सबसे ज़्यादा परहेज़गार हो

<sup>(10)</sup> इत्तेहक़ाक़ सुयूती देहली पेज/148

वला यजरे मन्नकुम शनान कौम अला  
अल्ला तादेलू आदेलू बोव अकरबो  
लित्तकवा वत्तकुल्लाह (सूरए मायदा)

“यानी अगर तू गैर मुस्लिम के बारे में फैसला करे तो इन्साफ़ से फैसला कर। बेशक खुदा इन्साफ़ करने वालों को दोस्त रखता है।” इस्लामी क़ानून में शाह व गदा यकसौं हैसियत रखते हैं। चुनानचे हुजुरे अनवर<sup>स०अ०</sup> ने फ़रमाया : व तक्वा लैस लाअहद अला अहद फ़ज़लुल आबेदीन (मिशकात) इसी का नतीजा यह है कि इस्लाम में सियासत, “हुसूले इक्तेदार के कामयाब ज़राय के इस्तेमाल” का नाम नहीं है बल्कि सियासत मुल्को मिल्लत के सही नज़्मो ज़ब्त और उमूरे खल्क (लोगों के काम) के बेहतरीन तरीक़े पर चलाने का नाम है। इस लिहाज़ से सियासी हुकूमत मज़हबी कयादत से अलग नहीं हो सकती और इसकी मिसाल खुद हज़रत पैग़म्बर<sup>स०अ०</sup> की ज़ाते गिरामी है। मगर याद रखने की बात है कि हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा<sup>स०अ०</sup> ने इस मुकम्मल इक्तेदार के बावजूद जिसके मातहत एलान कर दिया गया कि “उन को हर शख्स पर खुद उसकी ज़ात से ज़्यादा हक़ और इख्तियार है।” कभी अपने को बादशाह कहा या समझा जाना पसन्द नहीं किया बल्कि इससे इन्कार फ़रमाया। चुनौतिये एक मर्तबा एक शख्स आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ, जूँही आपके सामने खड़ा हुआ रोब से कांपने लगा। आपने फ़रमाया “अपने आपे में आओ मैं कोई बादशाह नहीं हूँ। मैं तो एक करशी औरत का बेटा हूँ जो शोरबे में रोटी भिगो कर (ग़रीबाना खाना) खाती थी।” (11) यह इसलिये था कि मुसलमानों में शरीयते इलाहिया की रहबरी से अलग हुक्मरान का तख़य्युल (ख़याल) पैदा न हो और सिवाए

(11) तबक़ात इब्ने सअद, कुम, जि/1, पेज/4

खुदा वन्दी इक्तेदार के किसी इक्तेदार के आगे मुसलमानों की गर्दने न झुकें।

(बक़िया पेज नं० 16 का.....)

“ जब उन का जिस्मानी होना इस कद्र सरीअ हरकत से मानेअ नहीं होता तो फिर रसूल के लिये जिस्मानी होने के साथ इतनी तेज सरीअ हरकत क्योंकर मुम्तना हो सकती है। इसके बाद ही उन्होंने लिखा कि बेशतर अरबाबे मिल्लत इब्लीस का वजूद तस्लीम करते हैं और ये मानते हैं कि बनी आदम के दिलों में वो वसवासों का इल्का करता है। और ये कि उसके लिये ये मुम्किन है कि वो मशरिफ़ से मगरिब तक बर्क़ रफ़्तारी से पहुंचे और बनी आदम के कुलूब में वसवसे पैदा करे। जाहिर है कि जब इब्लीस के लिये ये सुरअते रफ़तार जो बर्क़ व बद्र को भी पीछे छोड़ने वाली है मुम्किन है तो फिर अकाबिर—ए—अंबिया के लिये इसका जवाज़ तस्लीम करना बदरज—ए—ऊला ज़रूरी है। नक्ली हैसियत से इस तेज़ रफ़्तारी के सुबूत में तख़्त—ए—सुलैमान को पेशकिया जा सकता है और मलिक—ए—सबा बिलकीस के तख़्त को चश्मरवी जदन में आसिफ़ बरख़ियाने जिस तरह हज़रत सुलैमान के दरबार में मंगवा लिया है वो सब सरी से सरीअ तर हरकत के अमली हैसियत से मुम्किन मौजूद: एटमी दौर में इन इम्कानात की कोई ज़रूरत नहीं।

अब तो इस किस्म के वाकिआत आये दिन की चीज़े हो गयी है चाद तक इन्सानि सुर तो चन्द दिनों की बात है उसके बाद दूसरे सय्यारों तक पहुँचना सिर्फ़ तसव्वुर की दुनिया तक महदूद नहीं रहेगा। रूस और अमेरिका में सय्यारों तक पहुँचने की दौड़ जारी है। मेरा अकीदः है की इन्केशाफ़ात और ईजादात से मज़हब का तसव्वुरात को फायदा पहुँचेगा।